श्रीभैरवोपदेश

राज-योग

(सरल गुजराती भाषा एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

गुप्तावतार बाबाश्री

'चण्डी' वर्ष ४६, विशिष्ट अङ्क—६

राज-योग

रचयिता

गुप्तावतार बाबाश्री

अनुवादक

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

सम्पादक एवं टिप्पणी-कर्त्ता

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

श्री ऋतशील शर्मा

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

मूल्य १०/-

प्रकाशक
कल्याण-मन्दिर प्रकाशन,
चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग,
इलाहाबाद—२११००६

द्वितीय संस्करण : : फाल्गुन-पूर्णिमा २०४४ वि०—३ मार्च १९८८

मूल्य : [redacted] रु०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
परावाणी प्रेस,
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६

अ - नु - क्र - म

१	निवेदन	५
२	पुस्तक-परिचय	६
३	विषय-प्रवेश	७
४	'राज-योग' द्वारा 'मन्त्र' के विचार-पूर्वक जप का अर्थ	९
५	योग	१२
६	योग-वर्णन	१७
७	राज-योग	२०

निवेदन

(प्रथम संस्करण, वैशाख २००६—मई १६५२ का संक्षिप्त अंश)

'श्री भैरवोपदेश' पूज्य चरण श्रीमान् बाबा मोतीलाल जी महाराज की अध्यात्म-विषयक एक अनूठी रचना है। यह रचना गुजराती के सरस तथा ओज - पूर्ण पद्यों में है। इसमें कर्म, योग और ज्ञान आदि दार्शनिक तथ्यों का वर्णन हुआ है। यह वर्णन उपदेशात्मक होते हुए भी बहुत रोचक और हृदय-ग्राही है।

अभी तक यह रचना गुजराती में प्राप्त थी। अध्यात्म-विषय के प्रेमियों के सौभाग्य से अब यह हिन्दी-अक्षरों में हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशित हो रही है।

मुझ जैसे साधारण पाठकों की अल्प बुद्धि में योग, ज्ञान आदि गम्भीर विषय उतना समझ में नहीं आ पाते। ऐसों के लिये 'श्री भैरवोपदेश' में इन सभी विषयों का विवेचन ऐसे ढँग से किया गया है कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी उन्हें भले प्रकार हृदयङ्गम कर सकता है।

अध्यात्म - विषय के प्रेमियों को इस रचना का संग्रह कर इससे अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

देवीदत्त शुक्ल

वैशाख २००६, मई १६५२ प्रयाग

पुस्तक-परिचय

(मूल गुजराती संस्करण का संक्षिप्त अंश)

'श्री भैरवोपदेश' में सबसे पहले 'निष्काम योग' का वर्णन किया गया है। 'निष्काम योग' की पूर्ति हेतु 'कर्म-संन्यास योग' का वर्णन किया गया है। (ये दोनों अब पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

'कर्म-संन्यास योग' के बाद 'अध्यात्म योग', 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग' एवं 'वैराग्य योग' का वर्णन किया गया है। (ये तीनों भी पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

'वैराग्य योग' के बाद, इस उद्देश्य से कि मानवीय जीवन वासनाओं से मुक्त होकर उच्च स्थिति प्राप्त करे, 'अन्तराग्नि-होत्र' एवं दिव्य-भाव सूचक 'विज्ञान-योग' का वर्णन हुआ है। ('विज्ञान-योग' और 'अन्तराग्नि होत्र' ये दोनों भी पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं।)

'विज्ञान-योग' के बाद सोपान-रूप में राज-योग, हठ-योग, नाद-योग, मन्त्र-योग, लय-योग, ध्यान-योग और विचार-योग का वर्णन किया गया है। (ये सभी पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं।)।

इस प्रकार इस छोटे से ग्रन्थ में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति ऐसी जगत्-हितकारी एक नई योजना उपस्थित की गई है, जिससे सरल दृष्टि, सरल बुद्धि और सरल स्वभाव के व्यक्तियों का भी उपकार हो सकता है।

—शङ्कराचार्य श्रीस्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी

लींबड़ी, सं० १९९१, नवम्बर १९३४

गुप्तावतार बाबा श्री के प्रवचनों के आधार पर—

विषय-प्रवेश

भक्ति व ज्ञान के साथ 'राज-योग' उत्तम है !

'योग' शब्द का अर्थ होता है—जोड़ना या मिलाना । दूसरे शब्दों में निम्न चेतना को जाग्रत् करके उसे अपने अन्दर छिपी हुई शक्ति-शाली परम चेतना से मिलाना ही योग है।

'योग' के चार प्रमुख मार्ग हैं—१ राज-योग, २ हठ-योग, ३ नाद योग, ४ लय-योग।

'राज-योग' आत्म-परीक्षण--रूपी राज-मार्ग है । 'राज-योग' की साधना का मुख्य आलम्बन 'चित्त' है। इस प्रकार राज-योग के 'राज-मार्ग' में चेतना के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्तरों से सम्बन्ध स्थापित होता है।

'राज-योग' के प्रमुख अङ्ग क्रमशः—१ आसन, २ प्राणायाम व ३ ध्यानाभ्यास हैं। प्रारम्भिक अभ्यास में १ यम, २ नियम, ३ आसन व ४ प्राणायाम का समावेश होता है। उन्नत अभ्यास में ५ प्रत्याहार (ज्ञानेन्द्रियों का संयम), ६ धारणा (मन को एक स्थान पर केन्द्रित करना), ७ ध्यान (स्वाभाविक एकाग्रता) और ८ समाधि (व्यक्तिगत चेतना को परम चेतना में विलीन कर देना) का समावेश होता है।

'राज-मार्ग' सत्वात्मक मार्ग है। भक्ति व ज्ञान के लक्ष्य से 'राज-योग' उत्तम है ।

'राज-योग' में मन को विविध आकर्षणों से बल-पूर्वक हटा-कर उसे उच्च लक्ष्य से लगाने का प्रयत्न करना पड़ता है। मन

जल जैसा तरल है। यदि बहते हुये पानी को दीवाल बाँधकर रोका जाय, तो वह पीछे की ओर बढ़ेगा। इसी प्रकार यदि मन को बाह्य आकर्षणों से बल-पूर्वक रोका जाय, तो उसकी शक्ति अन्दर बढ़ेगी और वह अन्तर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्थानों का अवलोकन कर, अपने अधिकाधिक कल्याण की रूप-रेखा को निश्चित कर सकेगा। यही 'राज-योग', 'राज-मार्ग' का रहस्य है।

—ऋतशील शर्मा

प्रयाग, फाल्गुन पूर्णिमा २०४४ वि०

'राज-योग'

द्वारा

मन्त्र के विचार-पूर्वक जप

का

अर्थ

भगवान् सदाशिव ने मन की एकाग्रता और कल्याण के लिए अनेक उपाय बताये हैं, परन्तु सभी उपायों में विचार-पूर्वक (राज-मार्ग) ॐ'कार का जप सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है। वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक, बौद्ध, जैन आदि सभी साधनाओं में 'नाद-आश्रय' को विशेष महत्त्व दिया गया है। सभी यह स्वीकार करते हैं कि यथा-विधि अनुष्ठान होने पर 'नाद-साधना' के फल-स्वरूप परमात्मा का प्रकाश प्रस्फुटित होता है।

सम्पूर्ण विश्व शब्द से उद्भूत है। शब्द ही सृष्टि का मूल है। शास्त्रों में शब्द-सृष्टि के तीन प्रमुख प्रकार बताये गए हैं— १ वैखरी, २ मध्यमा और ३ पश्यन्ती। वैखरी शब्द-सृष्टि का निम्नतम स्तर है। वैखरी वाक् के मूल में व्यक्तियों की मानसिक चिन्ता अथवा मनोगत भाव होते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रयोजन के अनुसार वैखरी-वाक् अनन्त-रूपों में कार्य-रत है। यह 'वैखरी शब्द-सृष्टि' मन की बहिर्मुखी वृत्ति का प्रधान कारण है। मन को आन्तर वृत्ति का आश्रय दिलाने के लिए, वैखरी शब्द-सृष्टि का लङ्घन आवश्यक है।

वैखरी शब्द-सृष्टि के लङ्घन के लिए, राज-मार्ग द्वारा 'मन्त्र' का विचार-पूर्वक जप करना प्रसिद्ध है। मन्त्रों में 'ॐ' कार का जप अत्यन्त प्रभावकारी उपाय है। विचार-पूर्वक 'ॐ'कार का उच्चारण करने में, 'अ'कार से मन का उत्थान होता है, 'उ'कार मन को गति देता है तथा 'म'कार में मन लय हो जाता है। इस प्रकार 'ॐ' शब्द के उच्चारण से वैखरी शब्द-सृष्टि सहज रूप से लय को प्राप्त होती है।

वैखरी शब्द-सृष्टि के लय होने पर बहिर्मुखी वृत्ति का परिहार होकर आन्तर वृत्ति का आश्रय प्राप्त होता है। इसे शास्त्रों में 'मध्यमा शब्द-सृष्टि' में प्रवेश कहा जाता है। इससे ऊर्ध्व-दिशा में क्रमिक आरोहण प्रारम्भ हो जाता है।

मध्यमा शब्द-सृष्टि को मन्त्र-मयी भूमि कहा जाता है। इस क्षेत्र में नाद-मय चिद्-रश्मियाँ विराजमान रहती हैं। ये रश्मियाँ वैखरी शब्द-सृष्टि में दिखाई नहीं देतीं। दूसरे शब्दों में अनुष्ठान-युक्त मन्त्र-जप अथवा 'राज-मार्ग' द्वारा मध्यमा शब्द-सृष्टि में प्रवेश होने पर, वैखरी शब्द-सृष्टि की प्रच्छन्न चैतन्य-रश्मियाँ प्रस्फुटित हो जाती हैं।

इन चैतन्य-रश्मियों के प्रस्फुटित होने पर क्रमशः 'पश्यन्ती शब्द-सृष्टि' में प्रवेश होता है। पश्यन्ती शब्द-सृष्टि से सभी देवता प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार अन्ततः अन्तर में देवता का स्वरूप प्रकाशित होने पर सर्वत्र दिव्य भावों का प्रस्फुटन होने लगता है।

उपर्युक्त प्रकार से 'राज-योग' सिद्ध होने पर साधक को मन एकाग्र करने के लिए न तो त्राटक करना पड़ता है, न ही चित्त-वृत्तियों का निरोध करने की आवश्यकता पड़ती है।

'चित्त' के स्वतः लय हो जाने से 'राज-योग' में तब धारणा, ध्यान आदि की भी आवश्यकता नहीं रहती।

अस्तु ! राज-योग द्वारा अद्वितीय नित्य-शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप अखण्ड ब्रह्म-भाव की प्राप्ति होती है। अखण्ड ब्रह्म-भाव में निश्चल स्थिति की प्राप्ति होने पर, जगत् के अस्तित्व का बोध हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

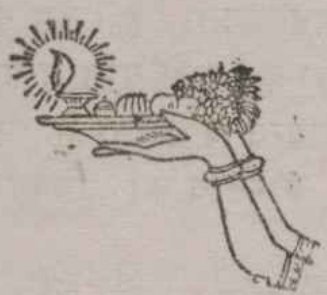

योग

(मूल गुजराती संस्करण से उद्धृत)

योग का अर्थ प्रकाश्य और प्रकाश का सीधा सम्बन्ध है।

मन एक ऐसी वस्तु है, जो 'वृत्ति' के आधार पर लटकती है। वृत्तियों में सदैव गति होती है। गति के स्वभावानुसार एक ही दृश्य या भोग-वस्तु स्थिर नहीं हो सकती। गति के कारण नये-नये भावों में वृत्तियाँ प्रविष्ट होती हैं और उनमें से प्रत्येक को मन भोगने लगता है। इस कारण मन में हमेशा अत्यन्त चाञ्चल्य रहता है। जैसे गति से पवन उत्पन्न होता है, वैसे ही मन की अत्यन्त चञ्चलता से 'तम' उत्पन्न होता है। इस तम के कारण अस्तित्व का विकास-रूपी सूर्य क्षण-क्षण आवृत्त रहता है।

अस्तित्व (आत्मा) और मन के बीच में जैसे-जैसे यह तम बढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे उसका प्रकाश मन पर पड़ने से रुकता है और जीव अपने काश से दूर होता जाता है। 'आवृत्त तम' में से झलकते हुए दिव्यास्तित्व की किरणें ही, व्यक्ति के मन को बुद्धि-रूप से सहायक हो सकती हैं।

चाञ्चल्य से बना हुआ इस प्रकार का तम जब तक कम नहीं होता, तब तक उन्नति का होना सम्भव नहीं है। जब तक मध्यस्थ तम है, तब तक प्रकाश्य और प्रकाश का सीधा सम्बन्ध नहीं होता। योग का अर्थ है मिलना अर्थात् सीधा सम्बन्ध

स्थापित होना। चाञ्चल्य का निरोध जब तक न हो सके, तब तक तम कम नहीं होगा और यह सीधा सम्बन्ध भी स्थापित नहीं हो सकता।

सरलतम साधन—'राज-योग'

मनोवृत्ति-निरोध के चार प्रकार हैं—१ राज-योग, २ हठ-योग, ३ लय-योग और ४ भक्ति-योग। राज-योग इसलिये उत्कृष्ट माना जाता है क्योंकि दूसरे सब साधनों से उसका साधन सरलतम है। दूसरे साधन कष्ट-साध्य हैं। १ यम, २ नियम और ३ ध्यान—ये राज-योग के तीन प्रधान अङ्ग हैं।

शरीर को किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना सुखासन से ध्यान हो सकता है। फिर भी इस विश्व को और विषयों को अनित्य समझ कर दृढ़ तीव्र वैराग्य उत्पन्न किये बिना, ध्यान नहीं हो सकता।

इसलिये राज-योग का 'प्रथम मन्त्र' यह है—

मात्रा-स्पर्शास्तु कौतेय ! शीतोष्ण-सुख-दुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितीक्षस्व भारत ! ॥

'राज-योग' और 'नीरसता'

राज-योगाभ्यासी को प्रारम्भ में लगातार तीन मास तक इस मन्त्र का अहर्निश चिन्तन करना पड़ता है। ऐसा करने से मन को बाह्य भोगादि की अनित्यता का ज्ञान हो जाता है और उसका उनमें से 'राग' मिट जाता है। उस समय मन की स्थिति ऐसी होती है कि, मन में 'उच्चाटन' होता है अर्थात् किसी वस्तु में मन रमता नहीं है। दूसरे 'नीरसता' का भाव बहुत बढ़ जाता है और आत्म-हत्या करने की इच्छा होती है।

ईश्वर की साकारता में अश्रद्धा उत्पन्न होती है। एकान्त में मूर्छित पड़े रहने की या किसी से न मिलने की इच्छा होती

है। यदि उसमें कुछ विघ्न आता है, तो कभी विघ्न करनेवाले पर या कभी अपने ऊपर भयङ्कर क्रोध उत्पन्न होता है। अन्नादि पदार्थ खाने की और पोषण लेने की इच्छा कम हो जाती है। कभी-कभी दौड़ने की इच्छा होती है और तीव्र उदासीनता कभी रुलाती है, तो कभी हँसाती है।

ऐसे चिह्न जब उत्पन्न होते हैं, तब समझना चाहिये कि मन में पूर्ण वैराग्य जाग्रत् हो गया है। जब ऐसा होता है, तब साधक को निर्गुण्डी पत्र का रस एक तोला या बड़ी लौकी के तीन तोले पत्ते का रस, मालकांगनी का तेल तीन बूंद से इक्कीस बूंद तक—इनमें से कोई एक वस्तु शहद के साथ अथवा श्वेत भाँग ३ माशे या शिलाजीत तीन से छः माशे कच्चा पीसकर गो-मूत्र में घोलकर दिन और रात में दो बार इक्कीस दिन तक देना चाहिये।

इनमें से मालकांगनी, निर्गुण्डी या शिलाजीत उत्तरोत्तर अधिक उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त हर प्रयोग के ऊपर, पाँच से इक्कीस बादाम तक पानी में घिसकर शक्कर के साथ सबेरे देना चाहिए। सन्ध्या को केवल गाय का दूध। इनके सिवा और कुछ भी खाने को न देना चाहिये। अन्न भी नहीं देना चाहिये। इस प्रकार इक्कीस दिन तक पथ्य देने से साधक का चित्त सहसा एकाग्र होने लगता है और ध्यान की धारणा उत्पन्न होती है।

'राज-योग' सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें

राज-योग के साधक को किसी भी वैषयिक और इन्द्रियों को उत्तेजित करनेवाले भाव में नहीं उतरना चाहिये। वैसे कारणों से उसे दूर ही रहना चाहिये और स्त्री का मुख नहीं देखना चाहिये। अपनी माँ को भी छः महीने तक न देखे, ऐसा

उल्लेख है। छः मास के ध्यान से 'कुण्डलिनी' जाग्रत् होकर सहज समाधि हो जाती है। यदि ऐसा अनुभव होने के बाद तीन-चार महीने तक ध्यान छोड़ दे, तो उसको फिर पूर्वोक्त अभ्यास प्रारम्भ करना पड़ेगा। 'हृत्-चक्र' में इष्ट-देव के गुण-मय रूप का ध्यान करना पड़ता है।

'कुण्डलिनी' के जाग्रत् होने से साधक सूख जाता है। उसके विचित्र दाह उत्पन्न होता है। मूर्छा में पड़े रहना अच्छा लगता है। पीठ में, सुषुम्णा में, विचित्र गुदगुदी होती है। थोड़े-थोड़े समय के बाद चींटियाँ चलती हैं, ऐसा भान होता है। यदि ऐसी हालत में साधक थोड़े दिन पड़ा रहे, तो उसके प्राण जाने का भय रहता है। उसकी अवधि साधारणतया ४१ दिन की और उससे बढ़ कर छः महीने तक की होती है। इससे ज्यादा वह जी नहीं सकता। उसको यही भान होता है कि अन्दर कोई तन्तु टूट गया अथवा कुछ उखड़ गया है। एक व्यक्ति इक्कीस दिन में ही मर गया था।

यदि किसी साधक को ऐसी स्थिति का अनुभव हो, तो उसे तीन-तीन घण्टे पर शहद, दूध और सिता तीन-तीन तोला मिलाकर देना चाहिए। निर्गुण्डी वृक्ष की तीन चार पत्तियों का चूर्ण गाय या बकरी के चार माशे घी के साथ, दिन-रात में तीन बार देना चाहिये।

ऊपर के इन दोनों उपचारों में, एक घण्टे का अन्तर रहना चाहिये। अगर निर्गुण्डी न मिले, तो हिरण या छाग का एक तोला कच्चा मांस देकर ऊपर से दो बार ब्रांडी देनी चाहिये। त्रि-मधु को निर्गुण्डी या मांस और ब्रांडी के साथ तीन-तीन घण्टे पर पाँच-पाँच बादाम दिन में तीन बार देना चाहिये। अन्न और नमक वर्जित हैं। इस प्रकार तीन दिन तक प्रयोग

करने से साधक की मूर्छा दूर हो जाती है। फिर साधक को धीरे-धीरे रेचक, कुम्भक करके भस्त्रीका करनी चाहिये।

इससे चित्-शक्ति फिर से कुण्डलिनी के ऊपर स्थित हो जायगी। साधारण हालत में वह कुण्डलिनी के ऊपर ही स्थित होती है, परन्तु कुण्डलिनी के चलने से वह च्युत हो जाती है। ऊपर कहे हुये उपाय से वह फिर अपने स्थान पर आ जाती है और तभी साधक जी सकता है। केवल आसन से कुण्डलिनी का उत्थान नहीं होता।

योग-वर्णन

अभ्यास योगनो ते,
जो हूँ तुने बताऊँ,
ते साधता सदा तूं,
पामे मुने जतावूँ । १

गुरुदेव शिष्य से कहते हैं कि अब मैं तुझे योग का अभ्यास बताता हूँ। उसका साधन करने से तू सदा मुझे पायेगा और मेरे ही जैसा हो जायेगा।

व्यवहार भेद साधन,
योगो घणा प्रकारे,
प्राधान चार भेदो,
सुण थाय जे प्रकारे । २

साधन के व्यवहार-भेद से योग बहुत प्रकार के होते हैं, पर उनमें मुख्य योग चार हैं। वे कैसे किए जाते हैं, मैं तुझसे कहता हूँ, सुनो।

लय, मन्त्र, राज, हठजो,
अभ्यासना विभेदो,
कर एक पूर्ण तपथी,
जग जाय भोग भेदो । ३

लय-योग, मन्त्र-योग, राज-योग और हठ-योग— ये योगाभ्यास के चार प्रधान भेद हैं। इनमें से यदि एक भी पूर्ण तपश्चर्या के साथ किया जाय, तो व्यक्ति जगत् के भोगों का भेदन करके पार हो सकता है।

अब उसकी अवस्था बताता हूँ—

तेनी सुणो अवस्था,
आरम्भ घट परिचय,
निष्पत्ति सर्वमां जे,
आचार भेद निश्चय । ४

प्रथम सीढ़ी यह है कि, गुरुदेव के शब्दों को अन्तर में स्थित करके उनके अनुकूल अभ्यास करना। प्रत्येक लक्ष्य का अनुभव प्राप्त करना, दूसरी सीढ़ी है। प्रभु में तन्मय होना, तीसरी सीढ़ी है। चौथी सीढ़ी है, तत्व का ध्यान करके तत्व-दैवत्व को सन्मुख कर लेना अर्थात् साक्षात्कार करना।

राज-योग

बीजाक्षरो परे छे,
बिन्दू परे अनन्त,
ते नाद सूक्ष्ममां जे,
गुण व्योम वास सन्त । १

जितने मन्त्र-बीज हैं, उनके परे विन्दु है, बिन्दु के परे अनन्त है। सूक्ष्म नाद अवकाश का गुण है और उसमें सन्त लोग निवास करते हैं।

ज्यां शब्दना श्रवणनी,
सर्वे क्रिया समापे,
त्यां अन्त एकता मां,
अन्तक्रिया समापे । २

उस स्थान पर शब्द-श्रवण और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की सम्पूर्ण क्रियायें समाप्त हो जाती हैं अर्थात् सूक्ष्म हो जाती हैं। जैसे, कान सुन नहीं सकते और अन्तर की एकाग्रता में आन्तरिक क्रिया समाप्त हो जाती है।

छे गन्ध पुष्प मां घी,
दुधे ने वीर्य रक्ते,
तिल मध्य तैल जेवूं,
छे स्वर्ण लोष्ट रक्ते । ३

जैसे पुष्प में गन्ध है, दूध में घी है, रक्त में वीर्य है, तिल में तैल है और लाल पत्थर में सोना है, वैसे ही—

आ विश्व ओत-प्रोती,
अव्यक्त व्यक्त चेते,
जो गन्ध पुष्प मां थी,
पवने पडी वधे ते । ४

इस विश्व में अर्थात् व्यक्त जगत् में अव्यक्त ओत-प्रोत है । जैसे पुष्प की सुगन्धि पवन के कारण बढ़ती है, वैसे ही योग का अभ्यास करने से व्यक्त में अव्यक्त का दर्शन होता है ।

आवाज जे अनाहत,
भेदी परे रमे जे,
ते योगमां चणायो,
छटकी परे रमे जे। ५

योगी अनाहत शब्द को भेद कर उससे परे निकल जाता है। जैसे दीवाल में ईंट जड़ी जाती है, वैसे ही योगी योग में जड़ जाता है और जगत् के व्यक्तत्व में से लटक कर उसके परे हो जाता है।

ॐ एक ब्रह्म - शब्दे,
एकाग्र चित्त धारी,
ध्यावे जपे मुमुक्षू,
पामे दिले करारी। ६

'ॐ' एक ब्रह्म-शब्द है। उसका एकाग्र चित्त से जप-ध्यान करने से मुमुक्षु को हृदय में शान्ति मिलती है।

थाये अकार लय जो,
प्रथमांश ते प्रणवनो,
ऋग्वेद भू अनल त्यां,
देखाय भाव नवनो । ७

'ॐ'कार में रहा हुआ 'अ'कार जिस स्थान में लय होता है, वह प्रणव का प्रथम अंश है। उसका ऋग्वेद है, भू लोक है, अग्नि तत्व है और वहाँ नव-शक्तियों या नव शब्दों का भाव दिखाई देता है।

जब मन प्रणव के जप में लय होकर तल्लीन हो जाता है, तब प्रथम 'अ'कार का लय होता है। जप करते समय प्रणव-नाद मूलाधार से उठता है। अभ्यास से 'ॐ' में से 'अ' निकल कर 'ॐ' के बदले केवल 'उम्' शब्द रह जाता है, फिर 'उ' निकल कर अकेला 'म्' रह जाता है।

अधिदेव तत्-पितामह,
रंगे देखाय पीलूं,
रज गुण रमे गुदाना,
चक्रे देखाय पीलूं । ८

उसका देवता पितामह ब्रह्मा है, रङ्ग पीला है, गुण रज है, जो गुदा-चक्र के भाव में रमता है।

बीजो उकार थाये,
लय अंश ते प्रणवनो,
यजु अन्तरिक्ष वायू,
भुव लोक भाव नवनो। ९

'ॐ'कार का दूसरा अक्षर, जो 'उकार है, वह प्रणव को लय में ले जानेवाला दूसरा अंश है। उसका यजुर्वेद है, आकाश-वायु तत्त्व है, भुवः लोक है और वहाँ भी नव का भाव दिखाई देता है।

अधिदेव विष्णु रंगे,
छे सात्विकी सफेद,
त्यां योनि लिंग चक्रो,
जल-तत्त्व भाव भेद। १०

उसका देवता विष्णु है, श्वेत रङ्ग है, योनि-लिङ्ग-चक्र उसका स्थान है और जल तत्त्व है।

मात्रार्द्ध जे मकार,
लय विन्दु नाद-रूपे,
छे अंश नाम त्रीजो,
ॐ कार मन्त्र रूपे । ११

अर्ध-मात्रा अर्थात् अर्ध-मकार अथवा बिन्दु 'ॐ' कार का तीसरा अंश है। मन विश्व को पैदा करता है। उस मन का क्रिया-भाव - रूपी विन्दु नाद-रूप से लय होता है।

आदित्य साम द्यौने,
स्वर्लोक सत्य लोक,
अधिदेव रुद्र रंगे,
तम कृष्ण वीत शोक । १२

अग्नि उसका तत्व है, साम वेद है, स्वर्ग लोक है, सत्य स्थान है, रुद्र अधिदेव है, काला रङ्ग है, तम गुण है और शोक को दूर करनेवाला है।

सद्-ब्रह्म भावनामां,
मणिपूर तत्त्व पावक,
जो मन्त्र सिद्ध थाये,
भव थाय शुद्ध भावक । १३

ऐसे त्र्यक्षरी 'ॐ'कार मन्त्र का जप करते हुए मणिपुर चक्र में सद्-ब्रह्म का ध्यान करने से मन्त्र की सिद्धि और भावना शुद्ध होती है।

ॐ कार शब्द ब्रह्म,
जो थाय वैखरी जग,
वाणी अकार देवो,
त्यांथी वहे सरी जग । १४

'ॐ'कार शब्द में से वैखरी-सृष्टि उत्पन्न होती है। 'ॐ'कार में वर्तमान अकार का दैवत ब्रह्मा है, रज गुण है और उसमें से जगत् बनता है।

'ॐ'कार का ध्यान यह है—

गमागमस्थं गमनादि-शून्यमोङ्कारमेकं रवि-कोटि-दीप्तम् ।
पश्यन्ति ये सर्व-जनान्तरस्थं, हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति ॥

ब्रह्मनो भाव पूरक,
विष्णू विचार कुम्भक,
श्री रुद्र प्राण संयम,
ना देव भाव रेचक । १५

गुदा-चक्र में ब्रह्मा का ध्यान करना पूरक, लिङ्ग-चक्र में विष्णु का ध्यान करना कुम्भक और नाभि-चक्र में रुद्र का ध्यान करना रेचक है। इस रीति से प्राण का संयम करने का नाम 'राज-मार्ग' है।

उच्चार ते प्रणवनो,
कर घण्ट नाद जेवो,
ते दीर्घ चालता मां,
लय थाय नाद तेवो । १६

प्रणव का उच्चारण घण्टा के नाद की तरह होना चाहिए। उच्चारण लम्बा करने से नाद लय होता है।

अविछिन्न शब्द गाजे,
आनंद बोध मां जे,
अंतर जगाडवा जे,
भय मोह कोह भाजे। १७

अविच्छिन्न नाद जब मन में गूँजने लगता है, तब आनन्द के विज्ञान में साधक मस्त बन जाता है। वह वैखरी जप वहाँ तक करना, जहाँ तक एक बार भी आनन्द का बोध न हो। उस आनन्द का बोध होने से भय, मोह, क्रोध आदि सब दोष दूर हो जाते हैं।

जो ह्रस्व मां कहे तो,
पापो दहे वहेतो,
जो दीर्घ भाव ले तो,
संपत्ति मुक्ति देतो। १८

'ॐ'कार मन्त्र ह्रस्व में जपने से पाप जल जाता है और दीर्घ में जपने से वह मुक्ति-रूपी सम्पत्ति का देनेवाला हो जाता है।

त्यां ज्योति ध्यानमां जो,
अंगुष्ठ मात्र जागी,
धर ध्यान धारणाथी,
धीरे धमाल जागी । १९

जब दीर्घ प्रणव मन में गूँजने लगता है, तब अन्तर में ध्यान करने से अंगुष्ठ-मात्र एक ज्योति दिखाई देती है। उस ज्योति का, तू सब खट-पट छोड़-कर धीरे से जाग्रत् रहकर, ध्यान कर।

ॐ कार शब्द जागे,
त्यां ध्यान चित्त लागे,
तो नाद अन्त देखे,
मुक्ति मले स्वभागे । २०

जब 'ॐ'कार मन्त्र जाग्रत् हो जाता है और साधक का चित्त ध्यान में लग जाकर ज्योति प्रगट होती है, तब शब्द-ब्रह्म का अन्त दिखाई देता है और सद्-भाव से ध्यान करनेवाला मुक्ति को प्राप्त करता है ।

જ મન જણે જગતનું,
છે બાપ કર્મનો જે,
લય થાય ધ્યાન વિંદૂ,
તો મુક્ત થાય મોજે । ૨૧

जो मन जगत् को और सम्पूर्ण कर्मों को पैदा करनेवाला है, वह यदि ध्यान करने से बिन्दु में लय हो, तो मुक्ति की मौज उड़ायेगा ।

હૃત્પદ્મ અન્તરે જો,
છે પદ્મ પુષ્પ કાલું,
તે આઠ પાંદડાનું,
કેસર બત્તીસ વાલું । ૨૨

द्वादश पंखुड़ियों के हृत् - पद्म के मध्य में आठ पंखुड़ियों और ३२ केशरोंवाला एक काला पद्म पुष्प दिखाई देगा ।

त्यां भानु भास भासे,
मध्ये शशी प्रकाशे,
शशि मध्य वह्नि जागे,
वचमां प्रभा प्रकाशे । २३

जब शब्द में मन लय हो जाता है, तब उस काले कमल में सूर्य का भास दिखाई देगा; उसके मध्य में चन्द्रमा का प्रकाश होगा; उसके मध्य में जाग्रत् अग्नि होगी और उसके भी मध्य में ज्योति का प्रकाश होगा ।

ते दीपती प्रभामां,
जो भव्य दिव्य आसन,
ते पर विराजती मां,
ज्योतिर्मयी सुखासन । २४

उस प्रकाश-मयी प्रभा में अत्यन्त दिव्य आसन दिखाई देगा और उस आसन के ऊपर सुखासन से बठी हुई ज्योतिर्मयी मां का दर्शन होगा ।

अलसीना पुष्प जेवूं,
छे श्याम वर्ण तेनूं,
कर चार तेज मुखनूं,
शशि कोटि काम जेनूं । २५

मां का वर्ण अलसी के पुष्प-जैसा श्याम वर्ण का होगा । उनके चार हाथ होंगे और कोटि चन्द्रमा के प्रकाश-जैसा तेजस्वी उनका मुख होगा ।

कौस्तुभ मणी उरे छे,
ने हार दिव्य 'मोती',
जो रूप सुन्दरीनूं,
ध्याने उतार गोती । २६

मा के उर पर कौस्तुभ मणियों और मोतियों का दिव्य हार होगा । उस सुन्दरी मां के स्वरूप को ढूंढ़ कर तू अन्तर में उतार ले ।

मुमुक्षु मार्ग

(रहस्योद्घाटन)

गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों

के

आधार पर

ॐ, राम, कृष्ण, गायत्री, नवार्ण,

मृत्युञ्जय आदि मन्त्रों का रहस्यार्थ

एवम्

कुण्डलिनी-रहस्य, योग-रहस्य,

पादुका-रहस्य, पूजा-रहस्य

आदि

महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन

मूल्य : १०-०० रु०